International Journal of Humanities and Social Science Research

International Journal of Humanities and Social Science Research
ISSN: 2455-2070; Impact Factor: RJIF 5.22
www.socialresearchjournals.com
Volume 2; Issue 8; August 2016; Page No. 107-109

मनु, याज्ञवल्क्य एवं नारद स्मृतियों में वर्णित दण्ड व्यवस्था

रेखा सिंह, राकेश शर्मा

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार उत्तराखण्ड, भारत।

प्रस्तावना

संस्कृत भाषा का धर्मशब्द बहुत व्यापक है। धर्मशास्त्रों में धर्म को अत्यधिक महत्व प्रदान किया गया है। मनु, याज्ञवल्क्य आदि ने राजा की भांति, धर्म को भी दैवी उत्पत्ति के सिद्धांत के रूप में प्रतिपादित किया है। उनका कथन है कि जब सांसारिक प्राणी मत्स्य न्याय से पीड़ित थे, तब प्रजापति ने उनके कष्ट के निवारण के लिये धर्म की उत्पत्ति की और उसकी सहायता से प्रशासन करने का आदेश दिया। परन्तु जनता धर्मानुसार प्रशासन करने में पूर्ण रूपेण असमर्थ रही। अतः प्रजापति ने विवश होकर राजा की सृष्टि की ओर उसकी सहायता के लिये दण्ड की व्यवस्था की, राजा को यह आदेश दिया की वह दण्ड की सहायता से धर्म की मर्यादा की रक्षा करे और उसका पालन न करने वालों को दण्ड दे। इससे स्पष्ट होता है कि राजा, धर्म तथा दण्ड तीनों की सृष्टि का कारण दैवी अनुग्रह है और इसी से तीनों के परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध का अनुमान लगाया जा सकता है।

दण्ड की परिभाषा

मनु के अनुसार यथा–

तस्यसर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
भयाद् भोगायकल्पन्ते स्वयधर्मान्न चलन्ति च।।

अर्थात, दण्ड वह विधान है, जिसके भय से सभी प्राणी अपना अपना भोग करने में समर्थ होते हैं, अन्यथा बलवान व्यक्ति दुर्बल व्यक्ति के धन, पत्नि आदि का ग्रहण कर लेता। इसी प्रकार वृक्ष आदि स्थावरों को काट कर भी वह दूसरों को न भोगने देता। राजा के डर से सज्जन भी नित्य नैमित्तिक आदि नियमों का पालन करते है।[1]

याज्ञवल्क्य के अनुसार दुराचारियों अर्थात अपराधियों का दमन करना ही दण्ड है।[2] मनुष्य को प्रमाद से बचाने तथा उसके धन की रक्षा करने के लिए संसार में जो मर्यादा स्थापित की गयी है दण्ड उसी का नाम है। इससे स्पष्ट होता है कि दण्ड वह विधान है जो सामाजिक सम्बन्धों, सम्पत्ति के अधिकारों एवं परम्पराओं का सही ढंग से परिपालन करवाता था।

दण्ड की उत्पत्ति

मनु स्मृति के अनुसार उस राजा के लिये ईश्वर ने सभी प्राणियों की रक्षा करने वाले, धर्मस्वरूप पुत्र ब्रह्मतेज से समन्वित दण्ड के रूप में धर्म की सृष्टि की।[3] याज्ञवलक्य स्मृति के अनुसार आदि काल में ब्रह्मा ने दण्ड के रूप में धर्म की सृष्टि की।[4] महाभारत के अनुसार अत्यन्त प्राचीन काल में जब ब्रह्मा यज्ञ कर रहे थे। उस समय योग की प्रधानता होने के कारण उनका दण्ड अन्तर्ध्यान हो गया। दण्ड के लुप्त होते ही प्रजा में वर्ण संकरता फैल गयी। कर्तव्याकर्तव्य, भक्ष्याभक्ष्य, गम्यागम्य विचारों का लोप हो गया। सर्वत्र अराजकता व्याप्त हो गयी। ऐसी परिस्थिति में ब्रह्मा ने शंकर से इस सामाजिक अनाचार को रोकने के लिये प्रार्थना की। परिणामस्वरूप स्वयं शिवदण्ड के रूप में प्रकट हुए क्रमशः विष्णु, मनु, एवं मनु के पुत्र से होते हुए आगे चलकर दण्ड राजा के हाथ में आया। अन्यत्र यह भी कहा है कि स्वयं ईश्वर ने धर्म की रक्षा के लिये दण्ड को क्षत्रिय के हाथ में दिया था।[5]

दण्ड का महत्व

मनु के अनुसार– वह दण्ड राजा है (क्योंकि दण्ड में ही राज करने की शक्ति है) वह दण्ड पुरूष है, वह दण्ड नेता है, वह दण्ड प्रशासन करने वाला है (क्योंकि दण्ड की आज्ञा से ही सब अपने अपने कर्म में संलग्न हैं), और वह दण्ड चारों आश्रमों के धर्म का प्रतिभू कहा गया है। विद्वान लोग दण्ड को ही धर्म समझते हैं। दण्ड के भय से ही सम्पूर्ण संसार (अपने अपने धनादिक) भोगने के लिये समर्थ होते हैं।[6] याज्ञवल्क्य स्मृति में भी दण्ड की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है– उनके अनुसार शास्त्र के विधि विधानों के अनुसार व्यवहार में लाये जाने पर दण्ड देवता राक्षस एवं मनुष्यों सहित इस सम्पूर्ण संसार को आनन्दित करता है। शास्त्र के विपरीत दण्ड देने पर राजा का सर्वस्व विनष्ट हो जाता है, किन्तु सम्यकरूप से दण्ड देने पर राजा को यशकीर्ति एवं स्वर्ग की प्राप्ति होती थी, जो राजा दण्ड का उचित ढंग से प्रयोग करता था। सभी वर्ण, जातियों तथा समुदायों का अपने धर्म से पथ भ्रष्ट होने पर राजा दण्ड के द्वारा ही पुनः स्वधर्म परिपालन करने के लिये बाध्य करता था।[7]

महाभारत के अनुसार दण्ड के भय से ही समस्त संसार सही मार्ग पर चलता है। दण्ड के अभाव में वेद तथा धर्म विनिष्ट हो जाते हैं, मत्स्यन्याय का प्राबल्य हो जाता है। कामन्दक ने तो दण्ड के महत्व का उल्लेख करते हुये दण्ड को राजा का पर्यायवाची माना है, क्योंकि राजा ही दण्डधर है।[8]

इस वर्णन से स्पष्ट होता है कि दण्ड से ही धन धान्य की रक्षा होती थी। दण्ड ही प्रजा का शासन एवं उसकी सुरक्षा करता था, इसी कारण यह कहा जाता है कि सबके सो जाने पर भी दण्ड जागता रहता था और इस कारण विद्वान उसे राजा का धर्म मानते थे। दण्ड का अनुचित प्रयोग करने पर उसका सर्वनाश हो जाता था। उचित अनुचित को ध्यान में रखकर जो राजा उचित दण्ड देता था वही कीर्ति व स्वर्गलोक को प्राप्त करता था।

दण्ड का उद्देश्य

याज्ञवल्क्य के मतानुसार यथा

अधर्मदण्डनं स्वर्गकीर्ति लोकविनाशनम्।
सम्युक्त दण्डनं राज्ञः स्वर्गकीर्तिजयावहम्।।

अर्थात, दण्ड का प्रयोगधर्म नियंत्रण में होना चाहिये। इस प्रकार का दण्ड प्रयोग करने वाला राजा धर्म का अवतार कहा गया है। न्याय के लिये दण्ड प्रयोग करने वाले राजा की कीर्ति का विस्तार होता है।[9] शारीरिक एवं लौकिक दण्ड से राजा को मुक्त करते हुए नारद कहते हैं कि राजा कभी अनुचित नहीं करता है। उसकी आज्ञा विधि है। दण्ड का कार्य राजाज्ञा का पालन करना है। राजाज्ञा के विपरीत कार्य करने वाले को दण्ड देकर राजाज्ञा का पालन कराना चाहिये।

एक अन्य स्थान पर नारद अपने विचार इस प्रकार प्रकट करते हैं– कि दण्ड जनकल्याण के लिये होता है। उसे शक्ति प्रयोग के स्थान पर न्याय का प्रयोग करना चाहिये।[10] याज्ञवलक्य ने शास्त्राज्ञा ही राजाज्ञा मानी है।[11] कौटिल्य ने प्रजा सुख को सर्वोच्च माना है। परन्तु दण्ड राज्य की शक्ति है तो धर्म उसका उद्देश्य[12] दोनों के समन्वय से ही दण्ड संस्कृति के विकास की संस्था और धर्ममानव के अन्तिम लक्ष्य का प्रतिपादक होता है।[13]

स्मृतियों के अनुसार राजा ही दण्डदाता है। राजा के लिये यमव्रत का पालन करते हुए दण्ड देने का विधान है। यह व्रत राजा को सर्वथा निरपेक्ष बना देता है। जिस प्रकार यम मृत्युकाल के उपस्थित होने पर मित्र शत्रु, प्रिय पात्र अथवा अप्रिय पात्र का विचार न करते हुए अपना कार्य करते हैं, ठीक उसी प्रकार राजा के लिये भी उसी प्रकार कार्य करने का नियम है।

सैद्धान्तिक रूप से दण्ड के तीन उद्देश्य होते हैं–

1. प्रथम के अनुसार दण्ड में बदले की भावना रहती है। आँख के बदले में आँख लेने की प्रवृत्ति रहती है।
2. द्वितीय के अनुसार दण्ड के द्वारा समाज में एक उदाहरण रखने की इच्छा रहती है अर्थात अपराधी का दण्ड इस प्रकार का हो जो लोगों के हृदय में भय का संचार करे जिससे अन्य लोग अपराध की ओर न बढें।
3. तृतीय सिद्धांत का उद्देश्य सुधारवादी कहा जा सकता है। इसके अनुसार अपराधी को सुधारने का प्रयत्न किया जाता है, ताकि वह पुनः उस तरह का अपराध न करें।

विद्वानों का मानना है कि दण्ड के ये तीनों ही उद्देश्य हो सकते हैं। पी0वी0 काणे के अनुसार समाज रक्षा तथा समाज सुख की स्थापना ही दण्ड का उद्देश्य था।[14] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि समाज में सुख, शान्ति, सुरक्षा न्याय तथा स्वधर्म का परिपालन करवाना ही दण्ड विधान का मुख्य उद्देश्य था।

मनु एवं याज्ञवल्क्य के द्वारा दण्ड के चार प्रकारों का उल्लेख किया गया है यथा–

मनुस्मृति

वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डं तदनन्तरम्।
तृतीयं धनदण्डं तु वधदण्डमतः परम्।।

याज्ञवल्क्य स्मृति–

धिग्दण्डस्त्वत्वथ वाग्दण्डो धनदण्डोवघस्तथा।
योज्या व्यस्ताः समस्ता व ह्यपराधवशादिमे।।

अर्थात

1. वाकदण्ड (कठोर वचनों द्वारा फटकारना)
2. धिकदण्ड (धिक्कार के वचन)
3. धन दण्ड (अर्थ)
4. वधदण्ड

इनमें से सबका अथवा एक का अपराध की गुरुता के अनुसार प्रयोग किया जाता था।[15] दण्ड क्रमशः दिया जाता था। सर्वप्रथम वाकदण्ड दिया जाता था। यदि उससे भी अपराधी में सुधार नहीं आता था तो धिकदण्ड की व्यवस्था थी। इसके पश्चात अर्थदण्ड। यदि इससे भी अपराध की निवृत्ति नहीं होती तब आगे चलकर मजबूत होकर मृत्युदण्ड दिया जाता था।[16] दण्ड के चारों प्रकारों का अभिप्राय इस प्रकार है–

1. वाकदण्ड– इस अपराध में अभियुक्त की मौलिक निन्दा की जाती थी कि तुमने उचित नहीं किया है, भविष्य में ऐसा न करना। इसमें गुणवान अपराधी की निन्दा की जाती थी।[17]
2. धनदण्ड– यदि प्रथम प्रकार के दण्ड विधान से व्यक्ति सत्य मार्ग पर नहीं आता था। तब उसे धिक्कारा जाता था अर्थात तुम्हारे इस पापयुक्त जीवन को तथा तुम्हारे इस कार्य को धिक्कार है आदि वाक्यों से निन्दा की जाती थी। सम्भवतः धिकदण्ड में निन्दा से आगे धिक्कार एवं अपशब्दों का प्रयोग किया जाता था।[18]
3. धनदण्ड– के अनेक भेद है। याज्ञवलक्य ने उत्तम मध्यम और अधम साहस के तीन भेद किये हैं। उनके अनुसार एक हजार अस्सी पण का दण्ड उत्तम साहस में होता था, तथा इसका आधा मध्यम साहस में दण्ड दिया जाता था। मध्यम साहस का आधा दण्ड अधम या प्रथम साहस में दिया जाता था।[19] पणों की संख्या में मतभेद है, किन्तु इन तीनों भेदों को प्रायः सभी स्मृतिकारों ने स्वीकार किया है।[20]
4. मृत्यदण्ड– यह अन्तिम दण्ड था। मनु का विचार है कि यदि व्यक्ति किसी भी प्रकार का प्रायश्चित नहीं करता तो उसे मृत्युदण्ड देना चाहिये। याज्ञवलक्य ने महापातकों के अपराध में मृत्यु दण्ड का विधान किया गया है।[21] याज्ञवलक्य का विचार है कि अपने से उच्च जाति की भार्या से व्यभिचार करने पर दोषी पुरूष का वध कर देना चाहिये तथा स्त्रियों का कान आदि काट लिया जाता था। जिसका विवाह संस्कार होने वाला हो ऐसी वस्त्र आभूषणों से युक्त उच्च जाति की कन्या का अपहरण करने वाले पुरूष को भी मृत्युदण्ड दिया जाता था।[22]

मनु, याज्ञवलक्य तथा नारद स्मृतियों में अपराध तथा दण्ड व्यवस्था का विस्तृत वर्णन किया गया है। स्मृतियों उन विषयों को जिनके अन्तर्गत विवाद उत्पन्न हो सकता है अठारह शीर्षकों में रखती है। व्यवहार के अठारह पदों का तात्पर्य यह है कि सभी प्रकार के विवाद अठारह शीर्षकों में से किसी एक के ही अन्तर्गत रहेंगे। यह नियम औपचारिक है। दंड की व्यवस्था भी स्मृतियों में इन अठारह प्रकार के पदो के अनुसार ही दी गयी है। प्राचीन भारतीय न्याय पद्धति के आधार स्तम्भ कहे जाने वाले विद्वानों के द्वारा भी इन अठारह पदों में समस्त विवादों को रखना स्वीकार कर लिया गया था। मनु, याज्ञवलक्य एवं नारद स्मृतियों के अतिरिक्त बृहस्पति, कौटिल्य आदि ने भी व्यवहार के अठारह पदों का वर्णन किया है। मनु तथा नारद अठारह पदों को एक ही स्थान पर संग्रहित करके दंड व्यवस्था बताते हैं। स्मृतियों के अनुसार विवाद के अठारह पद इस प्रकार हैं–

1. ऋणदान– इसमें ऋण के लेने देने से उत्पन्न होने वाले विवाद आते है।
2. निक्षेप– इसके अन्तर्गत अपनी वस्तु को दूसरे के पास धरोहर रखने से उत्पन्न विवाद आते हैं।
3. अस्वामी विक्रय– अधिकार न होते हुये दूसरे की वस्तु बेच देना।
4. संभूय समुत्थान– अनेक जनों का मिलकर साँझे में व्यवसाय करना।
5. दत्तस्य अनपाकर्म– कोई वस्तु देकर फिर क्रोध आदि लोभ के कारण बदल जाना।
6. वेतन का न देना– किसी से काम लेकर उसका मेहनताना न देना।
7. संविद का व्यतिक्रम– कोई व्यवस्था किसी के साथ करके उसे पूरा न करना।
8. क्रय विक्रय का अनुशय– किसी वस्तु के खरीदने या बेचने के बाद में असंतोष होना।
9. स्वामी और पशुपालन का विवाद– चरवाहे की असावधानता से जानवरों की मृत्यु आदि के सम्बन्ध में।
10. ग्राम आदि की सीमा का विवाद– मकान आदि की सीमा विवाद भी इसी में आता है।
11. वाक पारूष्य– गाली गलौच करना पारूष्य
12. दण्ड पारूष्य– मारपीट
13. स्तेय (चोरी)– यह कृत्य स्वामी से छुप कर होता है।

14. सहस–डकैती– बल पूर्वक स्वामी की उपस्थिति में धन का हरण।
15. स्त्री संग्रहण– स्त्रियों के साथ व्यभिचार
16. स्त्री पुंधर्म– स्त्री और पुरूष (पत्नी–पति) के आपस में विवाद।
17. विभाग–दाय विभाग– पैतृक सम्पत्ति आदि का विभाजन।
18. द्यूत और समाह्वय– दोनों जुआँ के अन्तर्गत आते हैं। प्राणी रहित पदार्थों के द्वारा ताश, चौपड, जुआ, द्यूत कहलाता है। प्राणियों के द्वारा तीतर, बटेर आदि का युद्ध घुड़दौड आदि समाह्वय

व्यवहार के इन अठारह पदों का वर्णन मनुस्मृति में किया गया है। नारद स्मृति में व्यवहार के जिन अठारह पदों का वर्णन किया गया है, वे मनुस्मृति से कुछ भिन्न हैं। मनु स्मृति में क्रय–विक्रय दोनों पदों को एक साथ रखा गया है किन्तु नारद स्मृति में क्रय विक्रय दोनों को अलग–अलग रखते हुए व्याख्या की गई है। नारद स्मृति में स्वामी और पशुपालन का विवाद, स्तेय, स्त्री संग्रहण का वर्णन अठारह पदों में नहीं किया गया है। परन्तु विवाद के अठारह पदों की पूर्ति अन्य प्रकारों से की है। नारद–स्मृति में क्रय–विक्रय को दो अलग अलग पदों में रखा गया है तथा अभ्युयेत्यशुश्रूष तथा प्रकीर्णक को व्यवहार के पदों में स्थान देकर अठारह पदों की पूर्ति की गयी है। इसी प्रकार याज्ञवलक्य स्मृति में जिन व्यवहार के पदों का वर्णन किया गया है, वे मनुस्मृति से कुछ भिन्नता रखते हैं। याज्ञवलक्य के द्वारा भी व्यवहार के अठारह पदों का वर्णन किया गया है उनके द्वारा भी नारद स्मृति के समान क्रय–विक्रय को अलग–अलग रखा गया है तथा स्त्री पुंधर्म का उल्लेख नहीं किया गया है। परन्तु नारद स्मृति के ही समान अभ्युयेत्यशुश्रषा तथा प्रकीर्णक का वर्णन करने से अठारह की संख्या पूर्ण हो जाती है। मनु, याज्ञवलक्य तथा नारद स्मृतियों में थोड़ी बहुत भिन्नताओं के साथ व्यवहार के विभिन्न पदों का वर्णन किया गया है।[23]

व्यवहार के पदों को जो इस प्रकार विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत रखा गया है इसका अर्थ यह नहीं था कि इन्हीं शीर्षकों के अन्तर्गत यदि विवाद होगा तो उसी का ही निर्णय किया जायेगा तथा दूसरे विवादों को स्वीकार नहीं किया जायेगा वास्तव में ये विभिन्न भेदों के रूप में अनेक प्रकार के विवादों का उपचार स्मृतियों से प्राप्त होता है। नारद ने इन विभिन्न भेदों की संख्या 108 बतायी है। परन्तु नारद स्मृति की ये संख्या स्वीकार नहीं की जा सकती है। विवाद चाहे कितने ही प्रकार के क्यों न हो वह इन शीर्षकों के अन्तर्गत किसी न किसी प्रकार आ ही जाते हैं।

न्याय व्यवस्था की इस विवेचना से ज्ञात होता है कि अपराधियों को सुधारने तथा समाज में अपराध पुनः न हो, लोग अपने अपने धर्म का परिपालन करते रहे, समाज में शांति एवं सुव्यवस्था बनी रहे आदि बातों को दृष्टि में रखकर मनु, याज्ञवलक्य एवं नारद स्मृतियों ने न्यायोचित दण्ड की व्यवस्था की गयी थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः

1. मनुस्मृति– 7/15
2. याज्ञवलक्य स्मृति– 1/355
3. मनुस्मृति– 7/14
4. याज्ञवलक्यस्मृति– 1/354
5. महाभारत शान्तिपर्व– 15/30; 67/16; 121/147
6. मनुस्मृति– 7/17–18; 22–25
7. याज्ञवलक्य स्मृति– 1/356–57; 359, 361
8. महाभारत शान्तिपर्व– 15/5, 32–33, 36–42, 45, 63/28; 7/12–13,30 कामन्दक नीतिसार–2/40, 151
9. याज्ञवलक्यस्मृति– 1/357
10. नारद स्मृति–3/6, 15/16–28, 18/13, 12
11. याज्ञवलक्य स्मृति– 1/357–358
12. कौटिल्य अर्थशास्त्र– 1/19 प्रजासुखे सुखम्
13. बी.के. सरकार– पोलिटिकल इन्स्टीट्यूशन एण्ड थ्योरीज ऑफ द हिन्दूज, पृ0–206
14. पी0वी0काणे– धर्मशास्त्र का इतिहास हिन्दी अनुवाद भाग–2 पृ0 762
15. मनुस्मृति– 8/129, याज्ञवलक्य स्मृति– 1/357
16. हरीहर नाथ त्रिपाठी– प्राचीन भारत में राजा और न्यायपालिका, पृ0 242
17. हरीहर नाथ त्रिपाठी–उपरोक्त पृ0 242
18. हरीहर नाथ त्रिपाठी–उपरोक्त पृ0 242
19. याज्ञवल्क्य स्मृति– 1/366
20. मनुस्मृति– 8/128, नारद स्मृति– 7/8
21. मनुस्मृति– 9/238, याज्ञवलक्य स्मृति– 2/278
22. याज्ञवलक्य स्मृति– 2/286–287, मनुस्मृति– 9/271,
23. मनुस्मृति– 8/4–7, नारद स्मृति– 1/17–20
24. याज्ञवलक्य स्मृति (सम्पूर्ण व्यवहार प्रकरण)